

दशमोऽध्यायः
स्त्रीदुराचारवर्णनम्
स्त्रीदुराचार का वर्णन

ब्रह्मोवाच

आराध्यानां हि सर्वेषामयमाराधने विधिः। चित्तज्ञानानुवृत्तिश्च हितैषित्वं च सर्वदा॥ १॥
कन्या पुनर्भूर्वेश्या च त्रिविधा एव योषितः। प्रिया मध्याप्रिया चैव योग्या मध्येतरा तथा॥ २॥
समा श्रेष्ठा च नीचा च भूयोऽपि त्रिविधाः पुनः। पूर्ववत्परयोर्वृत्तिरिष्टानुक्त्या प्रियाप्रिये॥ ३॥
अधमाप्रिययोरत्र पतिपत्न्यादिका मता। निषिद्धानां तु भक्ष्यादि तद्धि यत्नाद्विधीयते॥ ४॥

ब्रह्मदेव कहते हैं— मैं जो विधि कह रहा हूँ वही सभी आराध्यदेवगण की आराधना विधि है। आराधक को चाहिये कि पहले अपने आराध्य की चित्तवृत्ति का ज्ञान करके तदनुरूप व्यवहार द्वारा सर्वदा उसके प्रिय कार्य को ही करे। स्त्रीगण के तीन प्रकार कहे गये हैं यथा— प्रिया, मध्य प्रिया तथा योग्य मध्येतर प्रिया। कन्या प्रिया है। पुनर्भू मध्य प्रिया तथा वेश्या है मध्येतर प्रिया पुनः समान, श्रेष्ठ तथा नीच रूपी तीन भेद किये गये हैं। प्रिय तथा अप्रिय के अतिरिक्त पहली स्त्री के समान बाद वाली स्त्री प्रेम नहीं करती अपितु अपराध ही अधिक करती है। लेकिन बाकी कार्य अर्थात् पुत्रादि को जन्म देना तथा गृहस्थी के कार्य समानरूपेण करती है। इस लोक में ऐसे अधम तथा अप्रिय दम्पति के बीच भी पति-पत्नी का व्यवहार चलता रहता है। हे द्विजवृन्द! निषिद्ध में जो भक्ष्य आदि हैं (अर्थात् निषिद्ध भक्ष्य जो न खाया जाये) उसका भी यत्नपूर्वक विधान किया गया है॥ १-४॥

एकद्वित्वबहुत्वाद्या ये भेदाः समुदाहृताः। ज्येष्ठादिवृत्ते वक्ष्यामस्तानशेषान्द्विजोत्तमाः॥ ५॥
वृत्तं च द्विविधं स्त्रीणां बाह्यमाभ्यन्तरं तथा। भर्तुरन्यजने बाह्यं तस्याः शारीरमान्तरम्॥ ६॥
ज्ञातीतरदिभागेन तद्बाह्यं द्विविधं पुनः। पूज्यं तुल्यं कनिष्ठं च तत्प्रत्येकं पुनस्त्रिधा॥ ७॥
रहोरतं प्रकाशं च शारीरमपि तत्त्रिधा। भर्तुश्चित्तानुकूल्येन प्रयोक्तव्यं यथोचितम्॥ ८॥

ज्येष्ठ आदि का वर्णन करते समय वह सब कहूँगा। स्त्रीगण के जो एक-दो अथवा अनेक भेद कहे गये हैं, वे ही मुख्यतः स्त्रियों के व्यवहार होते हैं। अपने आभ्यन्तर के तथा अपने पति को छोड़कर बाकी सबके साथ के व्यवहार को बाह्य कहा जाता है। अपने शरीर से सम्बन्धित सभी व्यवहार को आभ्यन्तर व्यवहार कहा जाता है। अपने जातिगत लोगों के साथ के व्यवहार तथा सर्वसाधारण के साथ के व्यवहार — ये दो भेद बाह्य व्यवहार के होते हैं। इसमें भी पूज्य-तुल्य-कनिष्ठ भेद से तीन-तीन भेद हो जाते हैं। इसी प्रकार शरीर के भी रहस्य, प्रकाशादि तीन भेद हो गये। पत्नी को चाहिये कि अपने पति के चित्त के ही अनुकूल अपने सभी व्यवहार को करती रहे॥ ५-८॥

माता पिता स्वसा भ्राता पितृव्याचार्यमातुलाः। सभार्या भगिनी भर्ता भर्तृमातृपितृष्वसा॥ ९॥
धात्री वृद्धाङ्गनादिश्च यस्तत्राप्ता समो जनः। प्रथमोऽथ सपत्नी च स्त्रीणां मान्यतमो गणः॥ १०॥
एषामेव त्वपत्यादिभगिनीभ्रातरस्तथा। कनिष्ठा भर्तुरित्यादिभार्याश्चाप्तसमो मतः॥ ११॥
हीनोऽन्यः शासनीयस्तु तत्र तावन्न विद्यते। योग्यता सुतसौभाग्यैर्न यावत्स्यात्प्रतिष्ठिता॥ १२॥

यत्रापि गुरुभर्तृणामानुकूल्येन सर्वदा। वृत्तिः प्रशस्यते स्त्रीणां पूजाचाराविरोधिनी॥ १३॥

माता-पिता, बड़ी बहन, भाई, चाचा, मामा, आचार्य, चाचा-फूफा आदि की अपने से बड़ी कन्या, स्वामी पति के माता-पिता की बहनें, धाय, परिवार की वृद्ध स्त्री— ये पूज्य तथा आदरणीय होती हैं। स्त्री से पूर्व की ब्याही सौत भी उस स्त्री के लिये सम्माननीय है। इन सबके लड़के, लड़की, छोटे भाई-बहन, पति की अपने से छोटी सौत भी वही सम्मान प्राप्त करती है। वधू पतिगृह में तब तक किसी छोटे पर भी शासन नहीं कर सकती जब तक वह पुत्र प्राप्ति से तथा अन्य सौभाग्यादि से युक्त नहीं हो जाती। उसे गुरुजनों के प्रति उनकी सेवार्थ उनकी इच्छा के अनुरूप तथा पति की इच्छा के अनुकूल चलना चाहिये। स्त्रीगण के लिये यही प्रशस्त है। अन्य किसी की पूजा तथा व्रत, उपवासादि प्रशस्त नहीं है॥१-१३॥

देवरैः पतिमित्रैश्च परिहासक्रियोचितैः। विविक्तदेशावस्थानं वर्जयेदिति नर्म च॥ १४॥

प्रायशो हि कुलस्त्रीणां शीलविध्वंसहेतवः। दुष्टयोगो रहो नित्यं स्वातन्त्र्यमितनर्मता॥ १५॥

दुष्टसङ्गे त्वरा स्त्रीणां युवभिर्नर्म नोचितम्। निर्भेषता स्वतन्त्राणां साफल्यं रहसि ब्रजेत्॥ १६॥

पुंसो दुष्टेङ्गिताकारान्दुष्टभावप्रयोजितान्। भ्रातृवत्पितृवच्चैतानपश्यती परिवर्जयेत्॥ १७॥

अपने देवर तथा पति के मित्र-बन्धुगण के साथ उसे एकान्त में परिहास, हास्य, निवास नहीं करना चाहिये। ये सब कारण कुल की नारियों के शील को भ्रष्ट करने वाले हो जाते हैं। दुष्ट संगति, एकान्त निवास, स्वतन्त्रता तथा अत्यधिक हास्य, युवकों के साथ परिहास स्त्रीगण हेतु सर्वथा अनुचित है। जो स्त्री स्वच्छन्द प्रवृत्ति से युक्त है, उसकी अनुचित चेष्टा एकान्त में फलीभूत होती है। जो पराये पुरुष गन्दे इशारे करे तथा दुष्ट भावना वाले हों, उनको भी अपने भाई तथा पिता की भावना से देखे तथा उनकी उपेक्षा करे॥१४-१७॥

पुंसोऽन्याग्रहमालापस्मितविप्रेक्षतानि च। करान्तरेण द्रव्याणां निबन्धं ग्रहणार्पणम्॥ १८॥

द्वारप्रदेशावस्थानं राजमार्गावलोकनम्। प्रेक्षोद्यानादिशीलत्वं निरुध्वाद्देशमालयम्॥ १९॥

बहूनां दर्शने स्थानं दृष्टिवाक्कायचापलम्। छीवनत्वं ससीत्कारमुच्चैर्हसितजल्पितम्॥ २०॥

साङ्गत्यं लिङ्गिदुष्टस्त्रीभिक्षुकीक्षणादिभिः। मन्त्रमण्डलदीक्षायां सक्तिः संवसनेषु च॥ २१॥

इत्येवमादिदुर्वृत्तं प्रायो दुष्टजनोचितम्। वर्जयेत्परिरक्षन्ती कुलत्रितयवाच्यताम्॥ २२॥

॥ इति श्रीभविष्यमहापुराणे शतार्धसाहस्र्यां संहितायां ब्राह्मे पर्वणि

स्त्रीदुराचारवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः॥ १०॥

पराये पुरुष से वस्तु का लेन-देन, वार्ता, परिहास, विप्रेक्षण, अन्य के हाथ से धन का लेन-देन, दरवाजे पर खड़ी होना, सड़क देखना, खिड़की, झरोखे से झाँकना, बाग-उपवन में टहलना, अधिक लोग जहाँ हो वहाँ खड़ी होना, नेत्र, वचन तथा शरीर की चंचलता, यत्र-तत्र थूकना, ऊँची आवाज में हास्य, व्यर्थ बातचित, संन्यासी, दुष्ट नारी, भिक्षु की कुटनी की संगति मन्त्रमण्डलादीक्षा तथा ग्राम्य उत्सवों में आसक्ति—यह सब दुष्ट स्त्री के कार्य हैं। पवित्र पतिव्रता वधू अपने तीनों कुलों के निन्दात्मक कार्यों को अपने शील-सदाचार की रक्षा करने हेतु न करे॥१८-२२॥

॥ श्रीभविष्यमहापुराण के शतार्द्ध साहस्री नामक संहिता के ब्राह्मपर्व में

स्त्रीदुराचार का वर्णन नामक दसवाँ अध्याय पूर्ण हुआ॥१०॥

★★★